Toppersnotes®
Unleash the topper in you

SET

State Eligibility Test

राज्य पात्रता परीक्षा

संस्कृत

पेपर – 2 || भाग – 2

SIERRA INNOVATIONS

विषय सूची

इकाई – पंचमः

व्याकरण एवं भाषाविज्ञान 1

इकाई – षष्टः

व्याकरण का विशिष्ट अध्ययन 62

- परिभाषाएँ
- सन्धि
- सुबन्त
- समास
- तद्धित
- तिङन्त
- प्रत्ययान्त
- कृदन्त
- स्त्रीप्रत्यय
- कारक प्रकरण
- परस्मैपद एवं आत्मनेपद
- विधान
- महाभाष्य
- वाक्यपदीयम्

इकाई – सप्तमः

संस्कृत – साहित्य, काव्यशास्त्र एवं छन्दपरिचय 186

इकाई-पंचम

व्याकरण एवं भाषा-विज्ञान

व्याकरणाचार्यों का सामान्य परिचय

पाणिनि

आधुनिक संस्कृत-व्याकरण के विकास का प्रथम युग महर्षि पाणिनि के प्रादुर्भाव से माना जाता है। यद्यपि इनसे पूर्व करीब 66 वैयाकरण हुए, किन्तु सबके बारे में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है। उनमें 26 आचार्यों, जिनके बारे में जानकारी उपलब्ध हैं. उनमें 10 आचार्यों के नामोल्लेख महर्षि पाणिनी ने स्वयं अपने ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में किए हैं। ये हैं काश्यप, गार्ग्य, गालब, चाकवर्मन, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्प, सेनक और स्फोटायन। ये सभी या तो पाणिनि के पर्ववर्ती आचार्य हैं या समकालीन। पाणिनी ही आधुनिक संस्कृतव्याकरण के प्रणेता माने जाते हैं। इनकी कृति 'अष्टाध्यायी' सूत्र-शैष्व में निबद्ध है। इसमें आठ अध्याय, बत्तीस पाद और 3996 सूत्र हैं। इस पर महामुनि कात्यायन का विस्तृत वार्तिक और महर्षि पतञ्जलि का महाभाष्य है। सूत्र, वार्तिक और महाभाष्य इन तीनों के सम्मिलित रूप को 'पाणिनीय व्याकरण' की संज्ञा दी गई है। और सूत्रकार पाणिनि, वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतञ्जलि-तीनों व्याकरणशास्त्र के 'मुनित्रय' कहलाते हैं। पाणिनि के सूत्रों के आधार पर भट्टोजिदीक्षित ने 'सिद्धान्त कौमुदी' की रचना की। महर्षि पाणिनि ने छह प्रकार के सूत्रों की रचना की है। ये हैं-1. संज्ञा-सूत्र, 2. परिभाषा-सूत्र, 3. विधि सूत्र, 4. नियम-सूत्र, 5. अतिदेश-सूत्र और 6. अधिकार-सूत्र। महर्षि पाणिनि के समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् ए. बेबर तथा मैक्समूलर ने इन्हें 350 ई.पू. का माना है।

डॉ. गोल्डस्टुकर एवं भण्डारकर पाणिनि को 500 ईसापूर्व के आसपास का मानते हैं। बालकृष्ण पंचोली के मत में पाणिनि 1400 वर्ष पूर्व विद्यमान् थे। पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी ने इन्हें 2400 ईसापूर्व का बताया है। यधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि संस्कृत-वाङमय क प्राचीन ग्रन्थों से द्रष्टव्य बाहय साक्ष्यों तथा 'अष्टाध्यायी' के अन्तः साक्ष्या के आधार पर यह विदित होता है कि उस काल में साधारण की भाषा संस्कत थी। अत: यह काल 'शाखा-प्रवचन-काल' " अत्याधक निकट रहा होगा। इसी आधार पर इन्होंने निश्चय किया पाणिनि का समय भारत-युद्ध के 200 वर्ष पश्चात् अर्थात् 2500 विक्रमपूर्व है। किसी भी अवस्था में पाणिनि भारत-युद्ध से 300 वर्ष से अधिक उत्तरवर्ती नहीं हो सकते।

यद्यपि पाणिनि अपने इसी नाम से लोकविश्रत हैं। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार पुरुषोत्तमदेव ने इनके विभिन्न नाम इस प्रकार बताए हैं-- 1. पाणिनि, 2. पाणिन. 3. दाक्षीपत्र, 4. शालंकि, 5. शालातुरीय, 6.

अहिक।

अष्टाध्यायी में वर्णित सूत्रों 'तूदीश्लातुखर्मती कुचावाराऽढक्छ्ण्ढव्यक:' से शालातुरीय नाम से पुकारे जाने आदि के कारण विद्वानों ने पाणिनि का जन्म-स्थान शलातुर ग्राम माना है; जबकि 'उदकच् क्पिशः' (अष्टाध्यायी-4/2/34) तथा 'वाहीक ग्रामेभ्यश्च' (अष्टाध्यायी-4/2/117) सूत्रों के आधार पर युधिष्ठिर मीमांसक इन्हें वाहीक देश या इसके समीप का मानते हैं। 'दाक्षीपुत्र' सम्बोधन से स्पष्ट होता है कि इनकी माता का नाम 'दाक्षी'

था। विभिन्न विद्वानों के मतों का संयोजन करने पर यह भान होता है कि पाणिनि के पूर्वज 'शालातुर' ग्राम में ही रहते थे। पश्चिमी पंजाब (सम्प्रति पाकिस्तान में) के कटक जिले में स्थित 'लाहुर' ग्राम को ही पहले शालातुर कहा जाता था। पाणिनि के गुरु 'वर्ष' तथा शिष्य 'कौटस' थे।

'अय कालेन वर्षश्य शिष्यवर्गो महानभूत।
तत्रैकः पाणिनि म जडबुद्धि तरोऽभवत्।'

इनकी मृत्यु के विषय में कहा जाता है कि एक शेर ने इनकी हत्या कर दी थी'

सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहत्प्राणान् प्रियान् पाणिनेः।
मीमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा हस्ति मुनि जैमिनिम्॥
छन्दो ज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम्।
अज्ञानावृत्त चेतसाम तिरुषां कोऽर्थस्तितरश्चां गुणैः॥'
(पञ्चतन्त्र मित्रसम्प्राप्ति (विष्णुशर्माकृत) श्लोक-36)

कात्यायन

कात्यायन पाणिनीय-सूत्रों के प्रसिद्ध वार्तिककार हैं। इनका एक अन्य नाम 'वररुचि' भी है। इनके समय के सम्बन्ध में भी विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। नागेश भट्ट ने कात्यायन को पाणिनि का साक्षात् शिष्य कहा है। इस कथन में पाणिनि और कात्यायन समकालीन माने जाएँगे। डॉ. श्री प्रकाश शुक्ला ने इनका समय 2800 विक्रमपूर्व दर्शाया है। युधिष्ठिर मीमांसक इन्हें 2700 विक्रमपूर्व का बताते हैं। आधुनिक वैयाकरण इन्हें 500 ईसापूर्व से 300 ईसापूर्व के मध्यकाल का बताते हैं। मैक्समूलर के अनुसार कात्यायन का समय चौथी शताब्दी ईसा पूर्व तथा बेबर के अनुसार ईसा के जन्म से 25 वर्ष पूर्व है। पाणिनि-व्याकरण के उत्तरोत्तर विकास, इसका परिष्कार, परिवर्तित स्थिति में व्याकरण का सही प्रयोग, नवीन आगन्तुक समस्याओं का समाधान, सूत्रों की अतिव्याप्ति की सम्भावना होने पर उनका निरोध, और पाणिनि-व्याकरण में छूटे हुए कुछ सूक्ष्म तथ्यों को उनके महत्त्व के अनुसार उपस्थित करने में कात्यायन के वार्तिकों का महत्त्व सवयमेव सिद्ध है। इन्होंने पाणिनि-व्याकरण के लगभग 1500 सूत्रों पर 4000 वार्तिक लिखे हैं। श्रौत-सूत्रों और यजुर्वेद प्रातिशाख्य के भी रचयिता कात्यायन ही माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त इनके अग्रांकित ग्रंथ हैं-

श्राद्धकल्प सूत्र, पशुबन्ध सूत्र, प्रतिहार सूत्र, प्राकृत प्रकाय, अभिधर्मज्ञान प्रस्थान, वृषोत्सर्गपद्धति, वेद प्राप्ति, स्नानविधि इत्यादि।

महर्षि पतञ्जलि

संस्कृत-व्याकरण की अमोधकृति 'महाभाष्य' महर्षि पतंजलि की ही देन है। इन्होंने पाणिनि और कात्यायन के मन्तव्यों को स्पष्ट करते है हुए इन्हें अधिक परिमार्जित, परिशोधित एवं स्पष्टीकृत रूप में प्रस्तुत करने का महनीय प्रयत्न किया। 'महाभाष्य' कात्यायन और पाणिनि के अर्थ-अर्थान्तरों को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में पूर्णरूप से सक्षम है। जहाँ पाणिनि ने सूत्रों की रचना की, कात्यायन ने उन सूत्रों को 'वार्तिक' तत्त्वों से पुष्ट किया, वहीं पतंजलि ने 'महाभाष्य' नामक विशालकाय ग्रन्थ में व्याकरण के सभी आधारभूत

तत्वों को स्थान देते हुए व्याकरण की इस शैव परम्परा को अधिक सुगठित, परिवर्धित एवं वैज्ञानिक बनाने का नमनीय कार्य किया है।

पतंजलि के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मत वैभिन्य है। 'महाभाष्य'कार ने एक सूत्र के व्याख्याक्रम में कहा है कि 'इह पुष्यमित्रं याजयामः' इस वाक्य से ऐसा अनुमान किया जाता है कि पतंजलि ने पुष्यमित्र से यज्ञ कराया था। पुष्यमित्र का समय 1500 ई.पू. निर्धारित किया गया है। अतः यही पतंजलि का भी समय रहा होगा। कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान् इन्हें ईसा के पूर्व की प्रथम शताब्दी का मानते हैं। भारतीय गणनानुसार पुष्यमित्र का समय 1200 ईसापूर्व के आसपास निर्धारित करके तत्समकालीन पतंजलि का समय 1200 ईसापूर्व ही माना है।

'महाभाष्य' का वर्तमान उपलब्ध पाठ चन्द्राचार्य-द्वारा परिष्कृत है। चन्द्राचार्य ने कश्मीर के राजा अभिमन्यु के आदेश पर उस समय विलुप्त अवस्था में अवस्थित 'महाभाष्य' का परिष्कार किया। अभिमन्यु का समय 1200 विक्रमपूर्व माना गया है। युधिष्ठिर मीमांसक ने अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग के आधार पर पतंजलि का काल विक्रम संवत् से न्यूनातिन्यून 2000 वर्ष पूर्व का होना चाहिए।

भर्तृहरि

भर्तृहरि अपने पाण्डित्यपूर्ण और अद्वितीय रचना-निदर्शना के द्वारा संस्कृत-व्याकरण में उत्कृष्ट स्थान रखते हैं। व्याकरणशास्त्र के अध्ययन क्रम में मुनित्रय के बाद इन्हीं का स्मरण किया जाता है। इनके समय के विषय में संस्कृत-जगत् में अनिश्चितताएँ विद्यमान हैं। चीनी यात्री इत्सिंग के लेखानुसार भर्तृहरि को बौद्ध धर्मानुयायी मानते हुए उनका समय सप्तम शताब्दी के उत्तरार्द्ध माना जाता है। इत्सिंग ने ईसा के 691 वर्ष में भारत की यात्रा की थी। भर्तृहरि का समय इत्सिंग के भारत-भ्रमण से कई शताब्दी पूर्व का रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि भर्तृहरि इत्सिंग के यात्रा काल में विद्यमान् नहीं थे। साथ ही यह भान होता है कि इस समय भर्तृहरि अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के द्वारा जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किए हुए थे। युधिष्ठिर मीमांसक ने भी भर्तृहरि का समय ईसा की कई शताब्दियों के पूर्व का बताया है। अद्वैत वेदान्तियों में भी इनकी गणना की जाती है। परन्तु वाक्यपदीय' के अनुशीलन से इनका वैदिक मतानुयायी होना सिद्ध होता है।

भर्तृहरि के नाम से अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं -

1. महाभाष्यदीपिका, 2. वाक्यपदीय, 3. धातुसमीक्षा, 4. शब्दधातुसमीक्षा, 5. शतकत्रयी, 6. भट्टिकाव्य तथा 7. भागवृत्ति।

इत्सिंग ने 'महाभाष्य दीपिका' का परिमाण 25,000 श्लोको का बताया है। वर्धमान के कथनानुसार भर्तृहरि ने 'महाभाष्य की त्रिपादी पद टीका' लिखी थी। हेलराज ने स्पष्ट किया है कि 'त्रिपादी' का सम्बन्ध 'महाभाष्य की दीपिका' नामक टीका से है। 'वाक्यपटी लिखित टीका के तृतीय श्लोक में हेलराज लिखते है -

"त्रैलोक्यगामिनी येन त्रिकाण्डी त्रिपदी कृता।

तस्मै समस्तविद्याश्रीकान्ताय नमः॥'

इस श्लोक में त्रैलोक्यगामिनी त्रिकाण्डी रूप 'वाक्यपदीय ग्रन्थ के प्रणेता भर्तृहरि की तुलना तीनों लोकों को व्याप्त करने वाले भगवान विष्णु से करके उनकी वन्दना की गई है। इससे ससंदेह होता है कि भर्तहरि ने 'महाभाष्य' के प्रथम अध्याय के प्रथम तीन पाद तक ही, 'दीपिका' लिखी थी। इस बात का खण्डन कैय्यट अपने इस श्लोक में करते है।

तथापि हरिबन्धेन सारेण ग्रन्थ सेतुना।

त्रं क्रममाणः शनैः पारं प्राप्ताऽस्मि पगुवत्॥'

इसके अतिरिक्त पुरुषोत्तम देव,शरण देव, मैत्रेयरक्षित आदि परिवर्तित विद्वानों ने पाणिनि सूत्र-1/3/21, 3/1/16, 3/2/188, 7/3/34 तथा न्य 8/3/21 के अर्थ स्पष्टीकरण में भर्तृहरि ने जिन मतों का उल्लेख किया हैं। है, वे 'अष्टाध्यायी' के प्रथम अध्याय के तीन पादों के भाष्य के स अतिरिक्त हैं। अतः स्पष्ट होता है कि 'महाभाष्य दीपिका' नामक टीका ही सम्पूर्ण 'महाभाष्य' पर लिखी गई थी, जो आज पूर्णरूपेण उपलब्ध नहीं है। वर्धमान-प्रणीत 'गणरत्नमहोदधि, कैय्यट-प्रणीत महाभाष्यप्रदीप, है। शरणदेव-प्रणीत युर्घऽवृत्ति, नागेशभट-प्रणीत उद्योत, वैद्यनाथ-प्रणीत प्रणीत छाया, अन्नंवभट्ट-प्रणीत उद्योतन आदि आचार्यों के ग्रन्थों में इसके उद्धरण उपलब्ध होते हैं।'

वाक्यपदीय का अर्थ है- वाक्यं पद्यते येन असौ वाक्यपदः तस्य इदं वाक्यपदीयम्।' व्याकरणशास्त्र का यह शोभाधायक ग्रन्थ तीन काण्डों में विभक्त है-ब्रह्मकाण्ड या आगमकाण्ड, वाक्यकाण्ड और प्रकीर्णकाण्ड। इस ग्रन्थ में चतुर्दश समुद्देश है-जाति, द्रव्य, सम्बन्ध भूयोद्रव्य, गुण, दिक्, साधन, क्रिया, काल, पुरुष, उपग्रह, संख्या लिङग तथा वृत्ति। इत्सिंग के उल्लेखानसार भर्तहरि ने 'वाक्यचर्चा' एवं 'पेइन' नामक दो ग्रन्थों की रचना की थी। वास्तव में ये दोनों अलग-अलग ग्रन्थ नहीं, अपितु वाक्यपदीय के ही तीनों कांड है प्रथम दो काण्ड आगम और वाक्यकाण्ड को ही 'वाक्यचर्या " तथा अन्तिम प्रकीर्ण काण्ड को 'पेइन' कहा गया है। प्रकीर्ण को प्राकृत भाषा में 'पैण्ण' कहा जाता था। इसी का रूपान्तर 'पेइन' है।

वाक्यपदीय में समस्त ब्रह्माण्ड को शब्दब्रह्म का विवर्त मन गया है। शब्दब्रह्म की उत्पत्ति के विषय में इसमें बताया गया है कि क्रियाशक्ति जिसमें प्रधान है, ऐसी बिन्दुरूप प्रकृति से शब्द और शब्दाथ का कारण 'परा' रूप 'शब्दब्रह्म' उत्पन्न हुआ। इसकी नित्यता सृष्टि की स्थिति पर्यन्त समझनी चाहिए।

"क्रियाशक्ति प्रधानायाः शब्दशब्दार्थकारणम्।

प्रकृतेर्बिन्दुरूपिण्याः शब्दब्रह्मा भवत् परा॥'

वेदान्तदर्शन से सम्बन्धित 'धातसमीक्षा' ग्रन्थ भी भतृहरी द्वारा रचित है। उत्पलाचार्य ने 'स्पन्दप्रदीपिका' में भर्तृहरि का नामोल्लेख करते हुए 'धातुसमीक्षा' से चार पद्य पुनरुद्धृत किए हैं -

धातुसमीक्षायां च-

अविद्यासबलस्यास्य स्थितं मेयत्वमात्मनः।
गडीतं न निजं रूपं सबलेन तदात्मना।
चाऽनतात्मिकाऽविद्या नानृतस्य हि वस्तुना।
नाऽवस्तु वस्तुनो नाशं विकारं वा करोत्यतः॥
नाच्छादितस्य तमसा रज्जुखण्डस्य विक्रिया।
नाशो वा क्रियते यद्वत् तद्वन्नाविद्यात्मनः॥
नाऽतः स्वतो न परतो बन्धोऽस्य परमात्मनः।
बद्धोऽथाविद्यया जीवो मुक्तिस्तस्य हि तत्क्षये॥'

'धातु समीक्षा' - भर्तृहरि का यह दार्शनिक ग्रन्थ व्याकरण-दर्शन से सबद्ध है। इसमें मोक्ष-प्रदायक पश्यन्ती का निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थ में भर्तृहरि लिखते हैं'

वैयाकरणतां व्यक्त्वा विज्ञानान्वेषणेन किम्।
भवतामप्रस्तुतेन न केवलमिहोदितम्॥' ।
'विज्ञानाभासनं यावत् समीक्षायामुदाहृतम्॥'

अन्तिम पंक्ति में वर्णित 'समीक्षायाम्' पद से भर्तृहरि ने 'शब्दधातु सीमक्षायां' की ओर संकेत किया है, ऐसा उत्पलाचार्य मानते हैं।

'नीतिशतकम्', शृङ्गारशतकम्' और 'वैराग्यशतकम्' को ही शतकत्रयी कहा जाता है। 'नीतिशतकम्' के मङ्गलाचरण में विहित श्लोक निम्नलिखित हैं'

दिक्कालादिलक्षणेन व्यापकत्यं विटन्यते।
अवश्यं व्यापको यो हि सर्वदिक्षु स वर्तते॥
दिक्कालाधनवच्छिन्नान्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे॥'

इसमें से द्वितीय पद्य 'शब्दधातुसमीक्षा' से उद्धृत किया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि शतकत्रयी भी भर्तृहरि की रचना है।

भट्टिकाव्य के रचयिता वैयाकरण भर्तृहरि से भिन्न हैं। उनका वास्तविक नाम भट्टिस्वामी था। भट्टि के कुछ टीकाकारों ने इन्हें 'भर्तृहरि' कहा है। भट्टिकाव्य के अन्तिम पद्य में लिखित परिचयानुसार भट्टिकाव्य के रचयिता भर्तृहरि गुजरात में स्थित वलभी के निवासी थे तथा वलभी के राजा श्रीधरसेन के आश्रित थे।

'भागवृत्ति' के प्रणेता भी वैयाकरण भर्तृहरि से भिन्न थे। उनका वास्तविक नाम विमलमति था। युधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि व्याकरण पर अभूतपूर्व पाण्डित्य प्राप्त करने के कारण विमलगति को सम्मानस्वरूप औपाधिक रूप से 'भर्तृहरि' नाम से प्रसिद्धि मिली होगी।

वामनजयादित्य

वामनजयादित्य संस्कत के वैयाकरण थे। 'काशिकावत्ति' इनकी प्रमुख रचना है। हेमचन्द्र (1145 वि.) ने अपने 'शब्दानुशासन' में व्याख्याकार जयादित्य को बहुत ही रुचिपूर्ण ढंग से स्मरण किया है। चानी यात्री इत्सिंग ने अपनी भारत-यात्रा के प्रसंग में जयादित्य का प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णन किया है।

जयादित्य के जनम-मरण आदि वृत्तान्त के बारे में कोई भी परिमार्जित एव पुष्कल ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती। इत्सिंग की भारत यात्रा एव विवरण से कुछ जानकारी मिलती है। तदनुसार, जयादित्य का देहावसान स. 718 वि. के आस-पास हुआ होगा। जयादित्य ने भारविकृत पद्यांश उद्धृत किया है। इस आनुमानिक तथ्य के आधार पर जयादित्य का स. 650 से 700 वि. तक के मध्य अवस्थित होना माना जा सकता है। चीनी आदि विदेशी साहित्य में बहुत दिनों तक भारतीय साहित्य का अनुवाद होता रहा है। बहुत-सा भारतीय साहित्य अनुवाद-रूप से विदेशी साहित्य में पाया गया है, परन्तु उसका मूल ग्रन्थ भारत से लुप्त है। इस स्थिति में यदि विदेशी अनुवाद-साहित्य की गम्भीर गवेषणा की जाए तो जयादित्य के बारे में प्रामाणिक जानकारी मिल जाएगी।

जयादित्य की 'काशिकावृत्ति' महर्षि पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' पर व्याख्या-ग्रन्थ है। काशी में इसकी सृष्टि हुई होगी, क्योंकि काशिका का प्रधान अर्थ यही है (काश्यां भवः काशिका)। कुशकाशावलंबनन्याय से हमको जयादित्य के बारे में सोचने का अवसर मिलता है। सम्भव है जयादित्य काशीवासी हों।

राजतरंगिणी में जयापीड नामक राजा का नाम आया है, जो 667 शकाब्द में कश्मीर के सिंहासन पर बैठा था और जिसके एक मंत्री का नाम 'वामन' था। कुछ लोग इसी जयापीड को 'काशिका' का कर्ता मानते हैं। पर मैक्समूलर का मत है कि काशिकाकार जयादित्य कश्मीर के जयापीड से पहले हुआ है, क्योंकि चीनी यात्री इत्सिंग ने 612 शकाब्द में अपनी पुस्तक में जयादित्य के 'वृत्तिसूत्र' का उल्लेख किया है। इस विषय में इतना समझ रखना चाहिए कि कल्हण के दिए हुए संवत् बिलकुल ठीक नहीं हैं। 'काशिका' के प्रकाशक बालशास्त्री का मत है कि काशिका का कर्ता बौद्ध था, क्योंकि उसने मंगलाचरण नहीं लिखा है और पाणिनि के सूत्रों में फेरफार किया है।

बहुत से वैयाकरण प्रायः 'काशिका' को सम्पूर्ण रूप से जयादित्य का बनाया हुआ नहीं मानते। पुरुषोत्तमदेव, हरिदत्त इत्यादि। विद्वानों ने भाषावृत्ति, पदमंजरी, अमरटीका सर्वस्व, अष्टांगहृदय (सर्वांग सुंदरी टीका) में इसका उल्लेख किया है। कुछ विद्वान् जयादित्य और वामन को 'काशिका' का निर्माता मानते हैं।

'काशिका' पर जिनेन्द्रबुद्धि कृत 'काशिका विवरण पंजिका' (न्यास) और हरदत्त मिश्र ने 'पदमंजरी' ग्रंथ लिखा है। जिनेन्द्रकृत ग्रंथ 'न्यास' नाम से ही प्रसिद्ध है। यह बहुत विशाल और कई भागोंवाला ग्रंथ है। न्यास ने सर्वथा काशिका के समर्थन में प्रयास किया है, परन्तु पदमंजरी में कैय्यट (महाभाष्य के टीकाकार) का

अनुसरण है और अनावश्यक सामग्री को विडंबित किया गया है। 'काशिका' की केवल अपनी विशेषता यही है कि

1. आजकल प्राप्त होनेवाली वृत्तियों में अन्यतम और प्राचीन है.
2. प्रत्येकसूत्र पर यथासम्भव व्याख्या, उदाहरण, प्रत्युदाहरण,शंका समाधान प्रौढ़ है,
3. सभी उदाहरण प्राचीन परंपरा के अनुकरण पर हैं,
4. महाभाष्य-विरोधी उदाहरणों की भी पुष्टि की गई है,
5. प्राचीन एवं लुप्त व्याकरण-ग्रंथों के गणपाठ भी दिए गए हैं,
6. प्राचीनकाल में कैसी व्याख्या-पद्धति थी, इसका अर्थाभास काशिका से मिलता है। काशिका का तद्धित विषम रहस्यगर्भित हैं,

भट्टोजिदीक्षित

भट्टोजिदीक्षित चतुर्मुखी प्रतिभाशाली सुप्रसिद्ध वैयाकरण थे। इन्होंने 'सिद्धान्तकौमुदी' नामक व्याकरण-ग्रन्थ की रचना की।

पाणिनि-व्याकरण के प्रक्रियाक्रम में भट्टोजिदीक्षित-द्वारा प्रणीत 'सिद्धान्तकौमुदी' का वैशिष्ट्य इस बात से ही दर्शित है कि आज सम्पूर्ण भारत में व्याकरणाध्ययन का आधार यही ग्रन्थ है। इन्होंने अपने ही ग्रन्थ 'सिद्धान्तकौमुदी' पर 'प्रौढ़ मनोरमा' नामक टीका लिखी है। 'अष्टाध्यायी' पर इन्होंने 'शब्दकौस्तुभ' नामक वृत्ति लिखी।

भट्टोजिदीक्षित से पूर्व प्रक्रिया-ग्रन्थों में पाणिनि के सभी सूत्रों का संकलन नहीं हुआ। सर्वप्रथम इन्होंने ही प्रक्रिया में 'अष्टाध्यायी' का समावेश अनेक प्रकरणों के अन्तर्गत किया। सिद्धान्तकौमुदी' में चतुर्दश प्रकरण-संज्ञा, परिभाषा, सन्धि, सुबन्त, अव्यय, स्त्रीप्रत्यय, कारक, समास, तद्धित, तिङन्त, प्रक्रिया, कृदन्त, वैदिक स्वरप्रकरण एवं चार परिशिष्ट-पाणिनीयशिक्षा, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिङ्गानुशासन हैं।

भट्टोजिदीक्षित का पूरा ही वंश सरस्वती का साधक था। वे महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था। 'वैयाकरणभूषणसार' के प्रणेता कौण्डभट्ट इनके भाई रङ्गोजिभट्ट के पुत्र थे। 'प्रौढ़मनोरमा' के 'शब्दरत्न' नामक टीका के रचयिता हरिदीक्षित इनके पौत्र थे। भट्टोजिदीक्षित के शिष्य वरदराजाचार्य थे, जिन्होंने 'सिद्धान्तकौमुदी' को अधिक सरल रूप में प्रस्तुत करते हुए 'मध्यसिद्धान्तकौमुदी' तथा व्याकरणशास्त्र में प्रवेश चाहने वाले छात्र एवं सुधी जिज्ञासुगण के लिए लघुसिद्धान्तकौमुदी' का की रचना की।

भट्टोजिदीक्षित के काल के विषय में ऐतिह्यविदों में एकमत नहीं है। कतिपय लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के मत निम्न हैं-

1. सालातोरे-1575-1626 ई.

2. रायबहादुर आम्बेडकर-1570-1635 ई.

3. एस. के. वेल्वल्कर-1600-1650 ई.

4. जार्ज कार्डोना-1550 ई. 17वीं शताब्दी का आरम्भ

5. युधिष्ठिर मीमांसक-1570-1650 वि.

6. बलदेव उपाध्याय-1560-1610 ई.

युधिष्ठिर मीमांसक लन्दन के 'इण्डिया ऑफिस' के पुस्तकालय में विट्ठल-द्वारा प्रणीत 'प्रक्रियाप्रसाद' टीका के हस्तलेख (प्रतिलिपि लाल सं. 1936) के आधार पर भट्टोजिदीक्षित का काल 1570 से 1650 वि.सं. (1513 से 1593 ई.) निर्धारित करते हैं।

भट्टोजिदीक्षित के शिष्य नीलकण्ठ शुक्ल ने 1637 ई. में 'शाब्दबोध' नामक व्याकरण ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इस आधार पर भट्टोजिदीक्षित का काल 1637 ई. से पूर्व होना चाहिए। वत्सराज ने 1642 ई. में लिखित अपनी कृति 'वाराणसीदर्पण-प्रकाशिका' में भट्टोजिदीक्षित का उल्लेख किया है। अतः दीक्षित का काल इससे पूर्व 15वीं शताब्दी का उत्तरार्ध होना चाहिए।

बलदेव उपाध्याय श्रीनृसिंहाश्रय-द्वारा लिखित दीपनव्याख्या एवं स्वोपज्ञटीका 'दीपन' पर भट्टोजिदीक्षित-द्वारा लिखित दीपन-व्याख्यान एवं तदुत्तरवर्ती नीलकण्ठ शुक्ल-द्वारा 1637 ई. में दीक्षित के उल्लेख के आधार पर भट्टोजिदीक्षित का काल 1560 ई. 1610 ई. निश्चित करते हैं।

सर्वतन्त्रस्वतंत्र भट्टोजिदीक्षित का पाण्डित्य विविध शास्त्रों में अप्रतिहत था। यद्यपि संस्कृत-वाङ्मय में उनकी धवलकीर्ति वैयाकरण के रूप में प्रसृत है, परन्तु उनकी रचनाओं के गहन अनुशीलन से हमें ज्ञात होता है कि वे वेदान्त, मीमांसा, धर्मशास्त्र व अन्य शास्त्रों के पारङ्गत पण्डित थे। धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा मीमांसा वेदान्त पर भी उनकी पाण्डित्यपूर्ण कृतियाँ उपलब्ध होती हैं।

भट्टोजिदीक्षित-द्वारा विरचित व्याकरणविषयक कृतियों की संख्या प्रायः निश्चित है। पं. शिवदत्त दाधिमथ ने दीक्षित की तीन व्याकरण कृतियों का उल्लेख किया है शब्दकौस्तुभ, सिद्धान्तकौमुदी एवं प्रौढ़मनोरमा।

वर्ततान संस्कृत-जगत् में भट्टोजिदीक्षित की 'सिद्धान्तकौमटी का इतना अधिक वर्चस्व है कि इसने 'महाभाष्य' जैसे पाण्डित्यपूर्ण निदर्शन के आलोक को भी मध्यम कर दिया है। अतः कहा जा सकता है कि पाणिनि-व्याकरण के मुख्य द्वार-रूपी 'महाभाष्य' के बाहय क्षेत्र में भट्टोजिदीक्षित ने 'सिद्धान्तकौमुदी'-रूपी एक और सरल प्रवेश द्वार बना दिया।

'कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।
कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः॥'

भट्टोजिदीक्षित की विविध कृतियों के हस्तलेख प्राप्त होते है जिनका विवरण निम्न है-

1. सिद्धान्तकौमुदी (लिपिकाल 1503 शकाब्द 1581 ई.).

2. आचारकाण्ड (लिपिकाल 1648 एवं विक्रमाब्द 1511 ई.)

3. शब्दकौस्तुभ (1633 ई.)

इनमें सबसे प्राचीनतम पाण्डुलिपि (सिद्धान्तकौमुदी-1581 ई.) से भट्टोजिदीक्षित का आविर्भाव न्यूनतम 20-25 वर्ष पूर्व तो माना ही जा सकता है। अतः निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि भट्टोजिदीक्षित का काल सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध होना चाहिए। अधिकतर विद्वान् इसी मत के पोषक हैं।

नागेशभट्ट

'महाभाष्य प्रदीपोद्योत' नामक व्याकरण-ग्रन्थ के कर्ता नागेशभट्ट न केवल वैयाकरण थे, अपितु साहित्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, अलंकारशास्त्र एवं योग-विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना करके इन्होंने समग्र संस्कृत-साहित्य, को परिवर्द्धित किया।

नागेशभट्ट के जन्म-स्थान पर विचार करने वाले प्रायः सभी विद्वान् उन्हें महाराष्ट्र का मानते हैं। ये ब्राह्मण-कुल के थे। इनके माता-पिता के नाम के बारे में कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि अपनी सभी कृतियों में इन्होंने नामोल्लेखपूर्वक उनका स्मरण किया है। इनकी माता का नाम 'सती' तथा पिता का नाम 'शिवभट्ट' था। हरि दीक्षित इनके गुरु थे। इनकी कृतियों में बृहच्छब्देन्दुशेखर, वैयाकरण-सिद्धान्तमञ्जूषा, स्फोटवाद, परमलघुमञ्जूषा, परिभाषेन्दुशेखर, लघुशब्देन्दुशेखर, लघुमञ्जूषा इत्यादि प्रमुख हैं।

नागेशभट्ट ने अपने माता-पिता एवं गुरुओं के नाम का उल्लेख तो अपने ग्रन्थों में किया है, परन्तु अपने जीवन-काल के बारे में वे मौन हैं। इसी कारण उनके काल-निर्धारण में कठिनाई होती है। विद्वानों न विभिन्न ग्रन्थों के सन्दर्भ-सूत्रों को आधार बनाकर उनके काल की निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।

पी.के. गोडे महोदय ने नागेशभट्टकृत रचनाओं के विभिन्न हस्तलेखो में उल्लिखित तिथियों के आधार पर तथा नागेश-द्वारा अपनी कृतियो में उल्लिखित स्वपूर्वर्ती आचार्यों के काल के आधार पर उनका काल 1670-1680 ई. निर्धारित किया है। विशेष रूप से 'वैयाकरण सिद्धान्तमंजूषा' और 'महाभाष्य-प्रदीपोद्योत' के हस्तलेखों में उल्लिाख तिथियों को साक्ष्य मानकर तथा नागेश-द्वारा 'अशौचनिर्णय' । अपनी धर्मशास्त्रविषयक कृति में 'निर्णयसिन्धु' (1612 ई. 'सापिण्ड्य प्रदीप' में शंकरभट्ट (1540-1600 ई.), अन (1645-1675) तथा नन्द पण्डित (1595-1630) को उद्धृत के आधार पर नागेश के काल का अनुमान किया है। यह अ पर्याप्त रूप से प्रामाणिक प्रतीत होता है।

पी. वी काणे ने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' के प्रथम भाग में नागेश का समय 18वीं शती का प्रारम्भ (1700-1750 ई.) माना है। नागोजीभट्ट भट्टोजिदीक्षित के पौत्र के शिष्य थे और भट्टोजिदीक्षित " 17वि शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुए थे। नागोजीभट्ट के कम से कम 50 वर्ष अपने लेखन-कार्य में व्यतीत किए होंगे। अतः

भटटोजिदीक्षित के लगभग एक शताब्दी उपरान्त ही उनकी मृत्यु हुई होगी। अतः हम नागेश को 18वीं शताब्दी के आरम्भ में रख सकते हैं।

पण्डित यधिष्ठिर मीमांसक नागेश का काल विक्रम संवत् 1730 से 1810 के मध्य स्थापित करते हैं। प्रयाग के समीप स्थित श्रृंगवेरपुर नामक राज्य के राजा रामसिंह इनके आश्रयदाता थे।

'शृङ्वेश्वरपुराधीशाद् रामतो लब्धजीविकाः।'

इसी ग्रन्थ के अन्तिम पद्य से भान होता है कि नागेशभट्ट की कोई सन्तान नहीं थी। इन्होंने 'शब्देन्दुशेखर' को पुत्र तथा मञ्जूषा' को पुत्री के रूप में प्रतिष्ठित कर भगवान् शिव को अर्पित कर दिया

'शब्देन्दुशेखरः पुत्रो मञ्जूषा चैव कन्यका।।

स्वमतौ सम्यगुत्पाद्य शिवयोर्पितौ मया।'

यद्यपि नागेशभट्ट व्याकरणशास्त्र के अतिरिक्त अन्य अनेक शास्त्रों में पारंगत थे, प्रत्युत वे व्याकरणशास्त्र पर लिखित अपनी पाण्डित्यपूर्ण एवं ओजस्वी रचनाओं के लिए विद्वत्समाज में अधिक प्रतिष्ठित हैं।

जैनेन्द्र

व्याकरणशास्त्र के प्रणेताओं में जैन-धर्म से सम्बन्धित शाखा को 'जैनेन्द्र-शाखा' की संज्ञा दी गई है। इसके पहले वैयाकरण तीर्थंकर महावीर थे।

जैन-धर्म की मान्यतानुसार, भगवान महावीर जन्म से ही मति, श्रुति और अवधि-ज्ञान के धनी थे। उनके माता-पिता अध्ययन-हेतु उन्हें एक अध्यापक के पास ले गए। देवराज इन्द्र को यह पता चलने पर वह विचार करते हैं कि महावीर तो स्वयं ज्ञानवान् और परमात्मा हैं। इनके माता-पिता को यह बात मालूम नहीं है। इसीलिए इन्हें पढ़ाने के लिए पाठशाला ले आए हैं। तब इन्द्र एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर उस पाठशाला में आते हैं और अध्यापक से कुछ प्रश्न पूछते हैं। अध्यापक के बदले में भगवान् महावीर उनके प्रश्नों के उत्तर देते हैं। इन प्रश्नोत्तरों का संकलन ही 'जैनेन्द्र व्याकरण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जैनेन्द्र व्याकरण के दो सालक (शीर्षक) उपलब्ध हैं। एक में तीन हजार सूत्र हैं और दूसरे में 3700। इनके रचयिता देवनन्दी या पूज्यपाद माने गए हैं। इनपर पाणिनि और कात्यायन का गहरा प्रभाव है।

कुछ विद्वानों के अनुसार 'जैनेंद्र व्याकरण' जैन आचार्य देवनंदी (लगभग छठी शताब्दी) की रचना है। इसपर अभयनंदी की वृत्ति प्रसिद्ध है। जैनेंद्र व्याकरण के आधार पर किसी जैन आचार्य ने 9वीं शताब्दी में 'शाकटायन व्याकरण' लिखा और उसपर 'अमोघवृत्ति' की रचना की।

कैय्यट

वैयाकरण कैय्यट महर्षि पतंजलिकृत 'महाभाष्य' की 'प्रदीप' नामक टीका के रचयिता हैं। उनके पिता का नाम जैयटोपाध्याय था -

महाभाष्यार्णवाऽवारपारीणं विवृतिप्लवम्।

यथागमं विधास्येहं कैय्यटो जैयटात्मज॥

कैय्यट कश्मीर के निवासी थे। 'काव्यप्रकाश' की 'सुधासागर' नामक टीका में उनका काल 18वीं शताब्दी बताया गया है।

भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीयम्', 'स्वोपज्ञवृत्ति और 'महाभाष्यदीपिका'-रूपी अपनी ग्रन्थत्रयी में जिन गुरु गम्भीर दार्शनिक सिद्धान्तों को काव्यायित किया है, उन्हीं को सेतु-रूप में ग्रहण करके कैय्यट ने 'प्रदीप' का प्रणयन कर महाभाष्यार्णव को पार किया है। वेदर्षि कैय्यट ने अपने उपजीव्य पतंजलि एवं भर्तृहरि के अस्पष्ट भावों को जनसामान्य के लिए सुव्यक्त बनाकर व्याकरण-दर्शन में अपना अमूल्य योगदान दिया है। कहीं-कहीं वे इनसे अलग होकर भी अपनी बात कही हैं।

शाकटायन

शाकटायन नाम के दो व्यक्ति हुए हैं, जिनमें एक वैदिक काल के अन्तिम चरण के वैयाकरण तथा दूसरे 9वीं शताब्दी के अमोघवर्ष नृपतुंग के शासनकाल के वैयाकरण थे।

वैदिक काल के अन्तिम चरण (8वीं ईसापूर्व) के शाकटायन, संस्कृत-व्याकरण के रचयिता हैं। उनकी कृतियाँ अब उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु यक्ष, पाणिनि एवं अन्य संस्कृत-वैयाकरणों ने उनके विचारों का सन्दर्भ दिया है।

शाकटायन का विचार था कि सभी संज्ञा शब्द अन्ततः किसी-न-किसी धातु के व्युत्पन्न हैं। संस्कृत-व्याकरण में यह प्रक्रिया कृत-प्रत्यय के रूप में उपस्थित है। पाणिनि ने इस मत को स्वीकार किया, किन्तु इस विषय में कोई आग्रह नहीं रखा और यह भी कहा कि बहुत से शब्द ऐसे भी हैं, जो लोक की बोलचाल में आ गए हैं और उनसे धातु-प्रत्यय की पकड़ नहीं की जा सकती। शाकटायनद्वारा रचित व्याकरण-शास्त्र लक्षण शास्त्र' हो सकता है, जिसमें उन्होंने भी चेतन और अचेतन-निर्माण में व्याकरण के लिंग-निर्धारण की प्रक्रिया का वर्णन किया था।

हेमचन्द्रसूरि

आचार्य हेमचन्द्र (1145-1229) महान गुरु, समाज-सुधारक, धर्माचार्य, गणितज्ञ एवं अद्भुत प्रतिभाशाली मनीषी थे। भारतीय चिन्तन, साहित्य और साधना के क्षेत्र में इनका नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने साहित्य, दर्शन, योग, व्याकरण, काव्यशास्त्र, वामङ्गय के सभी अङ्गों पर नवीन साहित्य की सृष्टि तथा नये पन्थ को आलोकित किया है। संस्कृत एवं प्राकृत पर इनका समान अधिकार था।

संस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों में हेमचन्द्र का नाम विशेष महत्त्व रखता है। वे महापण्डित थे और 'कलिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्र के मर्मज्ञ थे, जैनधर्म और

दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे, टीकाकार थे और महान् कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नानाशास्त्र-पारंगत आचार्य थे, वहीं दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एवं अनेक भाषाकोशकार भी थे।

प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल राजा के धर्मोपदेशक होने के कारण अनेक इतिहास लेखकों ने आचार्य हेमचन्द्र के जीवनचरित पर अपना अभिमत प्रकट किया है।

आचार्य हेमचन्द्र का जन्म गुजरात में अहमदाबाद से 100 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम स्थित धन्धुका नगर में विक्रम संवत् 1145 के की पर्णिमा की रात्रि में हुआ था। माता-पिता शिव-पार्वती-उपासक वंशीय वैश्य थे। पिता का नाम चाचिंग अथवा चाच और माता का नाम पाहिणी देवी था। बालक का नाम चांगदेव रखा। माता पाहिणी और मामा नेमिनाथ दोनों ही जैन थे। आचार्य हेमचन्द्र बहुत बड़े आचार्य थे, अतः उनकी माता को उच्चासन मिलता था। सम्भव है, माता ने बाद में जैन-धर्म की दीक्षा ले ली हो। बालक चांगदेव जब 3 गर्भ में था, तब माता ने आश्चर्यजनक स्वप्न देखे थे। इसपर आचार्य र देवचन्द्र गुरु ने स्वप्न का विश्लेषण करते हुए कहा, 'सुलक्षण-सम्पन्न पुत्र होगा, जो दीक्षा लेगा। जैन-सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार-प्रसार करेगा।

बाल्यकाल से चांगदेव दीक्षा के लिए दृढ़ था। खम्भात में जैन-संघ = की अनुमति से उदयन मंत्री के सहयोग से नव वर्ष की आयु में इनका दीक्षा-संस्कार (विक्रम संवत् 1154 में माघ शुक्ल चतुर्दशी शनिवार को) हुआ। और नाम सोमचन्द्र रखा गया।

अल्प आयु में ही वे शास्त्रों में तथा व्यावहारिक ज्ञान में निपुण हो गए। 21 वर्ष की अवस्था में समस्त शास्त्रों का मन्थन कर ज्ञान वृद्धि की। नागपुर (महाराष्ट्र) के पास धनज ग्राम के एक वणिक ने विक्रम संवत् 1166 में सूरिपद प्रदान महोत्सव सम्पन्न किया। तब एक आश्चर्यजनक घटना घटी। चांगदेव, जो अब सोमचन्द्र बन चुके थे, एक मिट्टी के ढेर पर बैठे थे। आचार्य देवचन्द्रसूरी जी ने अपने ज्ञान में देखा और उदगार व्यक्त किए, 'सोम जहाँ बैठेगा, वहाँ हेम ही होगा' और वह मिट्टी का ढेर सोने में बदल चुका था। उसके बाद सोमचन्द्र, 'हेमचन्द्र' के नाम से जाने जाने लगे। शरीर सुवर्ण के समान तेजस्वी एवं चन्द्रमा के समान सुन्दर था। आचार्य ने साहित्य और समाज-सेवा करना आरम्भ किया। प्रभावकचरित के अनुसार माता पाहिणी देवी ने जैन-धर्म की दीक्षा ग्रहण की। अभयदेवसूरि के शिष्य प्रकांड गुरुश्री देवचन्द्रसूरि हेमचन्द्र के दीक्षागुरु, शिक्षागुरु या विद्यागुरु थे।

वृद्धावस्था में हेमचन्द्रसूरि को लूता रोग लग गया। अष्टांगयोगाभ्यासद्वारा उन्होंने इस रोग को नष्ट किया। 84 वर्ष की अवस्था में अनशनपूर्वक अन्त्याराधन-क्रिया आरम्भ की। विक्रम संवत 1229 में महापंडितों की प्रथम पंक्ति के पंडित ने दैहिक लीला समाप्त की। समाधिस्थल शत्रुञ्जय महातीर्थ पहाड़ स्थित है। प्रभावकचरित के अनुसार, राजा कुमारपाल को आचार्य का वियोग असह्य रहा और छह मास पश्चात् वह भी स्वर्ग सिधार गया।

हेमचन्द्र अद्वितीय विद्वान् थे। साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास में किसी दूसरे ग्रन्थकार की इतनी अधिक और विविध विषयों की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। व्याकरण-शास्त्र के इतिहास में हेमचन्द्र का नाम सुवर्णाक्षरों से लिखा जाता है। वे संस्कृत-शब्दानुशासन के अन्तिम रचयिता हैं।

व्याकरण के क्षेत्र में सिद्धहेमशब्दानुशासन, सिद्धहेम-लिङ्गानुशासन एवं धातुपारायण उनके उपलब्ध ग्रन्थ हैं। आचार्य ने समस्त व्याकरण वाङ्मय का अनुशीलन कर 'शब्दानुशासन' एवं अन्य व्याकरण-ग्रन्थों की रचना की। पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन कर सर्वाङ्ग परिपूर्ण उपयोगी एवं सरल व्याकरण की रचना कर उन्होंने संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं को पूर्णतया अनुशासित किया हैं

काव्यानुशासन से काव्यशास्त्र के पाठकों को समझने में सुलभता, सुगमता होती है। मम्मट का 'काव्यप्रकाश' विस्तृत है, सुव्यवस्थित है, सुगम नहीं है। अगणित टीकाएँ होने पर भी मम्मट का 'काव्यप्रकाश' दुर्गम रह जाता है। काव्यानुशासन' में इस दुर्गमता को अलंकारचूड़ामणि' एवं 'विवेक' के द्वारा सुगमता में परिणत किया गया है।

'काव्यानुशासन' में स्पष्ट लिखते हैं कि वे अपना मत-निर्धारण अभिनवगुप्त एवं भरत के आधार पर कर रहे हैं।

सचमुच अन्य ग्रन्थों-ग्रन्थकारों के उद्धरण प्रस्तुत करते हुए हेमचन्द्र अपना स्वयं का स्वतंत्र मत, शैली तथा मौलिक दृष्टिकोण रखते हैं ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों के नाम से संस्कृत-साहित्य, इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। यह सभी स्तर के पाठकों के लिए सर्वोत्कृष्ट पाठयपुस्तक है। इस प्रकार की रचना कर इन्होंने काव्यशास्त्र-प्रशिक्षुओं को विशेष ज्ञानवृद्धि का अवसर दिया है। अतः आचार्य हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन का अध्ययन करने के पश्चात् फिर दूसरा ग्रन्थ पढ़ने की जरूरत नहीं रहती। एक तरह से यह सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र पर सुव्यवस्थित तशा सुरचित प्रबन्ध है।

आचार्य हेम ने संस्कृत में अनेक कोशों की रचना की। वे हैं - अभिधानचिन्तामणिमाला, अनेकार्थसङ्ग्रह, निघण्टुशेष और देशीनाममाला।

अभिधान-चिन्तामणि (या 'अभिधान-चिन्तामणि-नाममाला') , इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश है। इसपर इनकी स्वविरचित 'यशोविजय' न टीका है जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर (देवसागकरणि) और 'सारोद्धार' (वल्लभगणि) प्रसिद्ध टीकाएँ है। इसमें नाना छन्दों में 1542 श्लोक है। ।

निघण्टुशेष अभिधानचिन्तामणि का पूरक कोश है, जिसमें वनपतियों । से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है। यह कोश छह काण्डों में बद्ध है।

'अनेकार्थसंग्रह' (श्लोक संख्या-1829) छह काण्डों में विभक्त । है। एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से काण्डयोजन है। अन्त में परिशिष्ट-काण्ड अव्ययों से सम्बद्ध है। प्रत्येक काण्ड में दो प्रकार की - शब्द-क्रम-योजनाएँ हैं-1. प्रथमाक्षरानुसारी और 2. अन्तिमाक्षरानुसारी।

'देशीनाममाला' प्राकृत का (और अंशतः अपभ्रंश का भी) शब्दकोश है, जिसका आधार 'पाइयलच्छी' नाममाला है। इनके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं –

1. काव्यानुशान, 2. छन्दानुशासन, 3. सिद्धहैमशब्दानुशासन (प्राकृत और अपभ्रंश का ग्रन्थ), 4. उणादिसूत्रवृत्ति, 5. द्वाश्रय महाकाव्य, 6. काव्यानुप्रकाश, 7. त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित, 8. परिशिष्ट-पर्वन, 9. अलंकारचूडामणि, 10. प्रमाणमीमांसा तथा 11. वीतरागस्तोत्र।

सारस्वत व्याकरणकार

स्वरूपाचार्य अनुभूति को सारस्वत व्याकरण का निर्माता माना जाता है। बहुत से वैयाकरण इनको सारस्वत का टीकाकार ही मानते है। इसकी पुष्टि में जो तथ्यपूर्ण प्रमाण मिलते हैं, उनमें क्षेमेन्द्र का प्रमाण सर्वोपरि है। मूल सारस्वतकार कौन थे, इसका पता नहीं चलता।

सारस्वत पर क्षेमेन्द्र की प्राचीनतम टीका मिलती है। उसमें सारस्वत का निर्माता नरेन्द्र' माना गया है। क्षेमेन्द्र सं. 1250 के आसपास वर्तमान थे। उसके बाद अनुभूति स्वरूपाचार्यकृत 'सारस्वतप्रक्रिया' नामक ग्रन्थ पाया जाता है। ग्रन्थ के नामकरण से ही मूल ग्रन्थकार का खंडन हो जाता है। फिर भी आज तक पूरा वैयाकरण-समाज अनुभूतिस्वरूपचार्य को ही सारस्वतकार मानता आ रहा है।

पाणिनि-व्याकरण की प्रसिद्धि का स्थान लेने के लिए ही 'सारस्वतप्रक्रिया' का निर्माण किया गया था। सचमुच यह उददेश अत्यन्त सफल रहा। देश के कोने-कोने में 'सारस्वतप्रक्रिया का पठन-पाठन चल पड़ा। अतएव अनुभूति स्वरूपाचार्य को मात्र टीकाकार तक ही सीमित न रखकर मूल ग्रंथकार के रूप में भी प्रतिष्ठापित किया गया।

अनुभति स्वरूपाचार्य की प्रक्रिया के अनुकरण पर अनेक टीका-ग्रन्थों का निर्माण-प्रवाह चल पड़ा। परिणामतः सारस्वत-व्याकरण पर 18 टीकाग्रन्थ बनाए गए, परन्तु अनुभूति स्वरूपाचार्य की प्रक्रिया टीका आगे सभी टीकाएँ फीकी पड़ गईं। इन्होंने सं. 1300 के लगभग सारस्वत प्रक्रिया' का निर्माण किया था। लोकश्रुति है कि सरस्वती की कपा से व्याकरण के सूत्र मिले थे। अतएव 'सारस्वत' नाम सार्थक माना गया।

पाणिनी शिक्षा

अथ शिक्षा प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।

शास्त्रानुपूर्णं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः॥1॥

अब मैं महर्ष पाणिनि के मतानुसार, 'शिक्षा' नामक वेदांग का प्रवचन करने जा रहा हूँ। इस पाणिनीय मत को शास्त्रोपदेष्टाओं की परंपरा से प्राप्त लोक-वेदानुकूल समझना चाहिए।। 1।।

प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः।

पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम्॥2॥

यद्यपि विद्वानों में साधु-शब्दोच्चारण की विधि सुप्रसिद्ध है, तथापि । मंदबुद्धि जिज्ञासुओं को इसका स्पष्ट बोध न होने के कारण वर्णोच्चारणविधि को पुनः प्रकट करने जा रहा हूँ।।2।।

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते (संभवतो) मताः।

प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवाः ॥3॥

प्राकृत (प्रकृतिभूत अथवा प्रकृतिप्राप्त) संस्कृत-भाषा में ब्रह्मा-द्वारा - साक्षादुच्चरित 63 अथवा 64 वर्ण ही शंभु (महेश्वर) के भी अभिमत हैं, अधिक नहीं।।3।।

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।

यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः॥4॥

अनुस्वारो विसर्गश्च - क - पौ चापि पराश्रितौ।

दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लकारः प्लुत एव च॥5॥

ये वर्ण हैं-21 स्वर, 25 स्पर्श, 'य' इत्यादि आठ स्मृता, 4 यम तथा अनुस्वार, विसर्ग, ककार-खकाराश्रित जिह्वामूलीय, पकार-फकाराश्रित उपध्मानीय, दुःस्पृष्ट और प्लुत लुकार हैं।।4-5।।

आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।

मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥6॥

आत्मा वासना-रूप में स्वनिहित पदार्थों का बौद्धिक संकलन कर उच्चारणेच्छा से मन को प्रेरित करता है; वह मन जठराग्नि को आहत करता है और वह जठराग्नि प्राणवायु को प्रेरित करता है।। 6।।

मारुतस्तूरांसे चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।

प्रातःसवनयोगं तं छंदो गायत्रमाश्रितम्॥7॥

वह प्राणवायु हृदय-प्रदेश में संचरण करता हुआ मंद (गंभीर) स्वर (ध्वनि) को उत्पन्न करता है, जिस स्वर में गायत्रीच्छंदोबद्ध मंत्रों का प्रातःसवन कर्म में पाठ विहित है।।7।।

कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुमानुगम् ।।

तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् ।। 8॥

वही वायु कंठस्थान में परिभ्रमण करता हुआ मध्यम स्वर (न मंद और न तार ध्वनि) को (उत्पन्न करता है) जिस स्वर में माध्यन्दिन सवन कर्म में त्रिष्टुप् छंदोबद्ध मंत्रों का उच्चारण विहित है और शिरःप्रदेश म पहुँच कर वहाँ परिभ्रमण करता हुआ तार स्वर को उत्पन्न करता है, जिस स्वर में जगतीच्छंदोबद्ध मंत्रों का सायंसवन कर्म में पाठ विहित है।।8।।